INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD)
© 2026 IJNRD | Volume 11, Issue 1, January 2026 | ISSN: 2456-4184 | IJNRD.ORG

"आधुनिक संदर्भ में प्राचीन कृषि की प्रासंगिकता"

शोध पर्यवेक्षक
डॉ ०कमल सिंह
सहायक आचार्य
इतिहास विभाग
श्री खुशहालदास विश्वविद्यालय
हनुमानगढ़, राजस्थान

शोधार्थिनी
निशा वर्मा
इतिहास विभाग
मो नं०9454201010
श्री खुशहालदास विश्वविद्यालय
हनुमानगढ़, राजस्थान

सारांश

कृषि मानवजीवन की आधारशिला रही है। प्राचीन भारत में कृषि एक समग्र- जीवन पद्धति के रूप में विकसित हुई, जबकि आधुनिक काल की कृषि एक तकनीक-प्रधान और बाजार - आधारित प्रणाली बन चुकी है। प्रस्तुत शोध- पत्र में प्राचीन कृषि व्यवस्था और आधुनिक कृषि प्रणाली की प्रासंगिकता का अध्ययन किया गया है। भूमि- स्वामित्व, उत्पादन पद्धति, तकनीक पर्यावरणीय दृष्टि, सामाजिक संरचना तथा कृषक की स्थिति जैसे आयाम के माध्यम से यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि जहां प्राचीन कृषि संतुलन, संरक्षण और सामुदायिक चेतना पर आधारित थी, वही आधुनिक- कृषि उत्पादन वृद्धि और लाभोन्मुखता पर केंद्रित है। यह शोध आधुनिक कृषि संकटों के संदर्भ में प्राचीन कृषि ज्ञान की प्रासंगिकता को रेखांकित करता है।

मूल शब्द

प्राचीन कृषि, आधुनिक कृषि, भूमि व्यवस्था, सिंचाई, पर्यावरण, कृषक समाज, मानव इतिहास सतत विकास आदि।

प्रस्तावना

मानव इतिहास में कृषि केवल आजीविका का साधन नहीं रही, बल्कि उसने सामाजिक संगठन, आर्थिक संरचना और सांस्कृतिक चेतना को गहराई से प्रभावित किया। प्राचीन भारत में कृषि को जीवन के नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों से जोड़कर देखा गया, जबकि आधुनिक युग में कृषि मुख्यतः उत्पादन और बाजार की आवश्यकताओं से संचालित होती है। रामशरण शर्मा के अनुसार-

"प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार कृषि थी, जिसे राज्य की स्थिरता और सामाजिक संतुलन को सुनिश्चित किया।"[1] इसके विपरीत बसु के अनुसार-

"आधुनिक कृषि वैश्विक पूंजी, तकनीकी नवाचार और उपभोक्ता मांग से प्रभावित है।"[2] इस प्रकार भारतीय सभ्यता का विकास कृषि के गर्भ से उत्पन्न हुआ है। कृषि न केवल जीविकोपार्जन का साधन रही, बल्कि सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक परंपरा, धार्मिक आस्थाओं तथा आर्थिक संगठन की आधारशिला भी रही है। प्राचीन भारत में कृषि को मात्र उत्पादन की प्रक्रिया नहीं माना गया, अपितु उसे जीवन -चक्र का अनिवार्य तत्व और प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व की साधना के रूप में देखा गया। वैदिक साहित्य से लेकर स्मृति, पुराण और अर्थशास्त्र तक-कृषि के संदर्भ बहु आयामी रूप में विद्यमान है।[3]

प्राचीन भारतीय कृषि व्यवस्था भूमि, जल, बीज और श्रम के मध्य संतुलन पर आधारित थी। कृषक केवल उत्पादक नहीं, बल्कि पर्यावरण का संरक्षक भी था। भूमि को 'माता' और अन्न को 'प्राण' की संज्ञा दी गई, जो यह दर्शाती है कि कृषि का संबंध केवल अर्थव्यवस्था से नहीं, बल्कि नैतिकता और दर्शन से भी जुड़ा हुआ था। यह दृष्टि आधुनिक औद्योगिक कृषि से मौलिक रूप से भिन्न है, जहां भूमि और प्रकृति को उत्पादन की वस्तु के रूप में देखा जाता है।

आधुनिक काल में कृषि व्यवस्था तकनीकी प्रगति, यंत्रीकरण और वैज्ञानिक नवाचारों से युक्त हुई है। हरित क्रांति के पश्चात उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि हुई, किंतु इसके साथ-साथ भूमि -क्षरण, जल संकट, रासायनिक प्रदूषण और कृषक असुरक्षा जैसी समस्याएं भी उभरकर सामने आईं। इस परिप्रेक्ष्य में यह आवश्यक हो गया कि प्राचीन कृषि प्रणाली और आधुनिक कृषि व्यवस्था का भारतीय कृषि को पुष्टि प्रदान करती है। जिससे कृषि संकट की जड़ों को ऐतिहासिक संदर्भ में समझा जा सके। प्राचीन कृषि की विशेषता उसका स्थानीयकरण और सामुदायिक स्वरूप था। "फसल -चक्र, मिश्रित खेती और प्राकृतिक उर्वरकों का प्रयोग भूमि की उर्वरता को बनाए रखने का साधन था।"[4] इसके विपरीत, "आधुनिक कृषि में एकल-फसल प्रणाली और रासायनिक निर्भरता ने उत्पादन को बाजार आधारित बना दिया है, जिससे कृषक आर्थिक जोखिम के घेरे में आ गया है।"[5] इस प्रकार भारत में कृषि का स्थान केवल जीवन निर्वाह तक सीमित नहीं रहा। यह समाज, संस्कृति, धर्म और राजनीति के प्रत्येक स्तर से गहराई से जुड़ी रही है। प्राचीन भारतीय समाज में कृषि का स्वरूप समग्र जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग था, जिसमें उत्पादन, संरक्षण, सामाजिक संगठन और सांस्कृतिक मूल्यों का अद्भुत संतुलन विद्यमान था। कृषक केवल उत्पादक नहीं, बल्कि ग्राम समुदाय, वातावरण और धर्म के संरक्षक भी थे। भूमि माता की प्रतीक थी जो इस बात का प्रमाण है कि कृषि केवल आर्थिक क्रिया नहीं, अपितु जीवन का नैतिक एवं सांस्कृतिक आयाम भी है।[6]

प्राचीन भारतीय कृषि प्रणाली का एक विशिष्ट गुण यह था कि वह सामाजिक संरचना के अनुकूल विकसित हुई। ग्राम, कृषक और भूमि के बीच स्पष्ट दायित्व और अधिकार स्थापित थे। कृषक को स्थायी उपयोग का अधिकार प्राप्त था, किंतु भूमि का संपूर्ण स्वामित्व राज्य या सामुदायिक संस्थाओं के पास होता था।[7] इससे न केवल भूमि की रक्षा सुनिश्चित हुई, बल्कि कृषक समुदायों में सामाजिक सहयोग और सामूहिक उत्तरदायित्व का विकास भी हुआ। वैदिक और गुप्तकालीन अभिलेख इस संरचना के प्रमाण के रूप में विद्यमान है, जो दिखाते हैं कि कृषि केवल उत्पादन का साधन नहीं, बल्कि ग्राम जीवन और सामाजिक स्थिरता का मूल आधार थी।[8] प्राचीन

भारतीय कृषि में पर्यावरण को ध्यान में रखा जाता था। भूमि, जल, वन और पशु जीवन केवल संसाधन नहीं थे, बल्कि उनका उपयोग संतुलन और संरक्षण के सिद्धांत के तहत किया जाता था। फसल -चक्र, मिश्रित खेती, प्राकृतिक उर्वरक और वर्षा -आधारित सिंचाई जैसी प्रथाएं केवल उत्पादन बढ़ाने के लिए नहीं, बल्कि अस्थाई तो और पारिस्थितिकी संतुलन बनाए रखने के लिए अपनाई जाती थीं।[9] धर्म- ग्रंथो और स्मृतियों में भूमि के आति-दोहन के खिलाफ स्पष्ट चेतावनी है, जो यह दर्शाता है की प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व प्राचीन कृषि का मूल दर्शन था।[10]

इस प्रकार वर्तमान समय में कृषि पूरी तरह तकनीकी और बाजार- आधारित प्रणाली बन गई है। हरित क्रांति, उच्च उत्पादक बीज, रासायनिक उर्वरक और यंत्रों के प्रयोग ने उत्पादन क्षमता में अभूतपूर्व वृद्धि की है, किंतु इसके साथ ही भूमि क्षरण, जल संकट, जैविक विविधता की हानि और कृषक असुरक्षा जैसी समस्याएं भी उत्पन्न हुई हैं। आधुनिक कृषि में कृषक की स्थिति प्राचीन काल के कृषक की तुलना में असुरक्षित है। सामुदायिक सुरक्षा, प्राकृतिक संसाधनों के स्थायित्व और पर्यावरणीय संतुलन की अपेक्षा आधुनिक कृषि में केवल आर्थिक लाभ पर ध्यान केंद्रित किया गया है। प्राचीन और आधुनिक कृषि के बीच अंतर केवल तकनीकि आर्थिक नहीं, बल्कि वैचारिक है। प्राचीन कृषि जीवन-संतुलन, नैतिकता, सामुदायिक सहयोग और पर्यावरण संरक्षण पर आधारित थी, जबकि आधुनिक कृषि उत्पादन -वृद्धि, बाजार-निर्भरता और लाभ- संचयन पर केंद्रित हो गई है। यह अंतर यह स्पष्ट करता है कि आधुनिक कृषि संकट-जैसे भूमि क्षरण, जल संकट, कृषक आत्महत्याएं और जैविक ह्रास -के समाधान के लिए केवल तकनीकी नवाचार पर्याप्त नहीं, बल्कि प्राचीन कृषि की दृष्टिकोण और सिद्धांतों का पुनर्मूल्यांकन भी आवश्यक है।

उद्देश्य

इस शोध पत्र का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि प्राचीन और आधुनिक कृषि के मध्य अंतर केवल कालगत नहीं, बल्कि वैचारिक और दार्शनिक भी है। जहां प्राचीन कृषि जीवन -संरक्षण की प्रक्रिया थी, वही आधुनिक कृषि अधिकतर लाभ-संचयन की प्रक्रिया बन गई है। अतः प्रस्तुत अध्ययन **"आधुनिक संदर्भ में प्राचीन कृषि की प्रासंगिकता"** के माध्यम से यह प्रतिपादित करने का प्रयास करता है कि भविष्य की कृषि नीति तभी संतुलित और स्थायी हो सकती है, जब वह प्राचीन कृषि की समन्वयकारी दृष्टि और आधुनिक विज्ञान की तकनीकी क्षमता-दोनों का सार्थक समावेश करें।

प्राचीन भारत में कृषि व्यवस्था

प्राचीन भारत में कृषि को 'यज्ञ'के समान पवित्र कर्म माना गया। भूमि को माता और अन्य को ब्रह्म कहा गया। ऋग्वेद में कृषि और वर्षा के संबंध का वर्णन मिलता है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में कृषि को राज्य की समृद्धि का मूल आधार बताया है। प्राचीन भारत में भूमि पर राज्य का सर्वोच्च अधिकार था, पर कृषक को स्थायी उपयोग का अधिकार प्राप्त था। भूमि को पूर्णतः निजी संपत्ति नहीं माना गया। कुएं ,तालाब, नहरें और वर्षा-आधारित सिंचाई प्राचीन कृषि के प्रमुख साधन थे। कृषि तकनीक सरल, स्थानीय और पर्यावरण के अनुकूल थी।

आधुनिक कृषि व्यवस्था

वर्तमान कृषि वैज्ञानिक तकनीक, रासायनिक उर्वरक, उच्च उत्पादक बीज और मशीनों पर आधारित है। हरित क्रांति ने उत्पादन तो बढ़ाया, किंतु पर्यावरणीय असंतुलन भी उत्पन्न किया। आधुनिक कृषि में भूमि निजी संपत्ति बन चुकी है। बाजार,ऋण और कॉर्पोरेट संरचनाएं कृषि निर्णयों को प्रभावित करती हैं। आधुनिक कृषक उत्पादन दबाव, ऋण और बाजार अनिश्चितता से जूझ रहा है। यह स्थित प्राचीन कृषक की अपेक्षाकृत स्थिर सामाजिक स्थिति से भिन्न है।

प्राचीन भारतीय कृषि की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसका पर्यावरण-संतुलित स्वरूप था। भूमि, जल, वन और पशु-इन सभी को उत्पादन के साधन मात्र नहीं, बल्कि संरक्षण योग्य प्राकृतिक घटक माना गया। धर्मशास्त्रों और स्मृतियों में भूमि के अत्यधिक दोहन को निंदनीय बताया गया है। फसल-चक्र, मिश्रित खेती और प्राकृतिक उर्वरकों का प्रयोग भूमि की ओर बढ़ता बनाए रखने का माध्यम था। इसके विपरीत, आधुनिक कृषि व्यवस्था में उत्पादन-वृद्धि को प्राथमिक लक्ष्य बनाया गया। रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और एकल फसल प्रणाली ने अल्पकालीन उत्पादन तो बढ़ाया, किंतु दीर्घकाल में भूमिक्षरण, जल-प्रदूषण और जैव -विविधता में गिरावट उत्पन्न की। इस प्रकार, प्राचीन कृषि प्रकृति के साथ सह -अस्तित्व की नीति अपनाती थी, वहीं आधुनिक कृषि प्रकृति पर नियंत्रण और दोहन की प्रवृत्ति को दर्शाती है।

प्राचीन भारत में कृषक समाज का आधार था। यद्यपि वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत उसकी स्थिति जटिल रही, फिर भी उसे 'अन्नदाता' के रूप में सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। ग्राम समुदाय कृषक को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता था। अकाल, विपत्ति या प्राकृतिक आपदा की स्थिति में सामुदायिक सहयोग की परंपरा विद्यमान थी। आधुनिक कृषि व्यवस्था में कृषक सामाजिक रूप से अधिक असुरक्षित दिखाई देता है। बाजार -निर्भरता,ऋण-भार और मूल्य-अनिश्चितता ने कृषक को आर्थिक दबाव में डाल दिया। सामुदायिक संरचनाओं के कमजोर होने से कृषक की सामाजिक सुरक्षा भी क्षीण हुई है। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि प्राचीन कृषि ने कृषक को सामाजिक जड़ता प्रदान की, जबकि आधुनिक कृषि ने उसे आर्थिक जोखिम के केंद्र में ला खड़ा किया है। प्राचीन कृषि तकनीक स्थानीय संसाधनों पर आधारित है। हल, बैल, प्राकृतिक खाद और वर्षा -आधारित सिंचाई के माध्यम से उत्पादन किया जाता था। यह तकनीक सीमित थी, किंतु पर्यावरण-अनुकूल और दीर्घकालिक थी। आधुनिक कृषि में मशीनों, उच्च उत्पादक बीजों और वैज्ञानिक तकनीकों का व्यापक प्रयोग होता है। इससे उत्पादन क्षमता में वृद्धि हुई, परंतु ऊर्जा -निर्भरता और लागत में भी तीव्र वृद्धि हुई। प्रॉपर तथ्यों से स्पष्ट होता है कि प्राचीन कृषि 'कम उत्पादन -अधिक स्थायित्व'पर आधारित थी, जबकि आधुनिक कृषि 'अधिक उत्पादन -कम स्थायित्व'की समस्या से जूझ रही है।

प्राचीन भारत में भूमि को राज्य की संपत्ति माना जाता था और कृषक उसके उपयोग कर्ता थे। भूमि का उद्देश्य उत्पादन और सामाजिक कल्याण था, न कि लाभ -संग्रह। आधुनिक काल में भूमि निजी संपत्ति बन चुकी है। भूमि बाजार, निवेश और मुनाफे का साधन बन गई है। इस परिवर्तन ने कृषि को सामाजिक दायित्व से अलग कर आर्थिक वस्तु में परिवर्तित कर दिया है। आधुनिक

कृषि 21वीं शताब्दी में अनेक संकटों से जूझ रही है-जलवायु परिवर्तन, भूमि क्षरण, जल -अभाव, कृषक आत्महत्याएं तथा खाद्य असुरक्षा। इन समस्याओं का समाधान केवल तकनीकी नवाचार में नहीं, बल्कि कृषि दृष्टि के पुनर्संयोजन में निहित है। इसी संदर्भ में प्राचीन भारतीय कृषि -व्यवस्था अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होती है। प्राचीन कृषि का मूल दर्शन यह था कि भूमि जीवित सत्ता है,न कि उत्पादन की निष्क्रिय वस्तु। यह दृष्टि आधुनिक 'सस्टेनेबल एग्रीकल्चर'की अवधारणा से गहन साम्यता रखती है। आज जैविक खेती, प्राकृतिक खेती और शून्य -बजट कृषि जैसी प्रणाली यहां वस्तुत: प्राचीन कृषि ज्ञान की आधुनिक पुनर्व्याख्या है। प्राचीन भारत में कृषि केवल आर्थिक क्रिया नहीं मानी गई थी बल्कि नैतिक दायित्व भी थी। ऋग्वेद और अथर्ववेद में अन्न को 'प्राणतत्व'कहा गया है। इस प्रकार अगर आधुनिक कृषि को अत्यधिक विकसित करना है तो प्राचीन कृषि प्रणाली को अपनाना ही होगा। क्योंकि मानव कितना भी विकसित हो जाए उसे अपनी जड़ को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। क्योंकि प्राचीन कृषि व्यवस्था जीवन के संतुलन और नैतिकता पर आधारित थी जबकि आधुनिक कृषि उत्पादन वृद्धि लाभ संचयन पर आधारित है। यही अंतर स्पष्ट करता है कि आधुनिक कृषि अनेक प्रकार के संकटों को भी उत्पन्न करती है जिसमें जल संकट, कृषक आत्महत्याएं जैविक ह्रास के समाधान के लिए केवल तकनीकी नवाचार पर्याप्त नहीं है, बल्कि प्राचीन कृषि के दृष्टिकोण और सिद्धांतों को अपनाना भी आवश्यक है।

निष्कर्ष

प्राचीन भारतीय कृषि और आधुनिक कृषि व्यवस्था के अध्ययन से निम्न निष्कर्ष स्पष्ट होता है-

1. वैचारिक अंतर-प्राचीन कृषि जीवन- संतुलन, नैतिकता और सामुदायिक सहयोग और पर्यावरणीय संतुलन पर आधारित थी। आधुनिक कृषि उत्पादन बाजार और लाभ संचयन पर केंद्रित है।

2. तकनीकी दृष्टि-प्राचीन कृषि में स्थानीय संसाधनों और प्राकृतिक तकनीकी का उपयोग किया जाता था। आधुनिक कृषि में यंत्रीकरण, रासायनिक उर्वरक और उच्च उत्पादक बीजों का प्रयोग मुख्य है।

3. कृषक की स्थिति-प्राचीन कृषि में कृषक सामाजिक सुरक्षा और सामुदायिक सहयोग का हिस्सा था। आधुनिक कृषि में कृषक बाजार असमानताओं और ऋण भार के कारण असुरक्षित है।

4. पर्यावरणीय स्थायित्व-प्राचीन कृषि पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखती थी, जबकि आधुनिक कृषि ने भूमि क्षरण, जल संकट और जैविक विविधता की हानि जैसी समस्याएं उत्पन्न की हैं।

5. भूमि और संसाधन प्रबंधन-प्राचीन कृषि में भूमि सामुदायिक/राज्य स्वामित्व वाली थी और उसका संतुलित उपयोग होता था। आधुनिक कृषि में भूमि निजी संपत्ति बन गई है और उत्पादन-मुनाफा केंद्रित दृष्टि अपनाई गई है।

आधुनिक संदर्भ में प्राचीन कृषि की प्रासंगिकता

1. सतत कृषि-फसल- चक्र, मिश्रित खेती और जैविक खाद्य प्राचीन दृष्टि के आधुनिक रूप हैं।
2. कृषक सुरक्षा-सामुदायिक सहयोग और सामाजिक संरचना को अपनाकर कृषक असुरक्षा कम की जा सकती है।
3. पर्यावरणीय संतुलन-प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित प्रयोग और संरक्षण आधुनिक कृषि में भी अत्यधिक आवश्यक है।

इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक कृषि संकट केवल तकनीकि कर्म से नहीं, बल्कि वैचारिक संतुलन के कारण उत्पन्न हुए हैं। अदा प्राचीन कृषि की दृष्टिकोण और सिद्धांतों का समावेश आधुनिक कृषि नीति के लिए मार्गदर्शक हो सकता है।

अनुसंशाएं

1. स्थानीय बीजों और पारंपरिक फसल- चक्र को पुनर्जीवित किया जाए।
2. जैविक खेती और प्राकृतिक उर्वरक का अधिकतम उपयोग बढ़ाया जाए।
3. कृषक समुदायों में सामुदायिक सहयोग और सामाजिक सुरक्षा को मजबूत किया जाए।
4. भूमि और जल संसाधनों का संतुलित प्रबंधन सुनिश्चित किया जाए।
5. आधुनिक तकनीक और प्राचीन दृष्टि का संयोजन सतत कृषि के लिए अपनाया जाए।

इस प्रकार इस शोध पत्र से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन भारतीय कृषि और आधुनिक कृषि के बीच केवल समयगत अंतर नहीं, अपितु दृष्टिकोण, तकनीक, सामाजिक सुरक्षा और पर्यावरणीय दृष्टि का भी अंतर है। आधुनिक कृषि संकटों के समाधान में प्राचीन कृषि का ज्ञान अत्यंत उपयोगी है। यह शोध नीति निर्माताओं, कृषक समुदाय और शैक्षिक अनुसंधान के लिए मूल्यवान दिशा -निर्देश प्रस्तुत करता है।

संदर्भ-ग्रंथ

---

[1] शर्मा, रामशरण (2001), प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन, दिल्ली, ओरिएंट लॉन्गमैन, पृष्ठ 121।

[2] बसु,तपन(2010), कृषि संकट और भारत ,कलकत्ता, प्रोग्रेसिव पब्लिशर्स, पृष्ठ90।

[3] चक्रवर्ती, उमाशंकर (1999), वैदिक संस्कृति और कृषि, वाराणसी, चौखंबा, पृष्ठ 92।

[4] सिंह,के०एस०(2008), भारतीय कृषि का इतिहास, इलाहाबाद, साहित्यभवन,पृष्ठ 268।

[5] शर्मा, रामशरण (2001), पृष्ठ128।

[6] चक्रवर्ती, उमाशंकर (1999), पृष्ठ 85।

[7] कौटिल्य(2005), अर्थशास्त्र (हिंदी अनुवाद), वाराणसी, चौखंबा, पृष्ठ 214।

[8] सिंह, के ०एस०(2008), पृष्ठ 260।

9 शुक्ल, रामनारायण (2002),पृष्ठ 141।

10 मजूमदार, आर०सी०(1988), पृष्ठ 45।

Copyright & License:

© Authors retain the copyright of this article. This work is published under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0), permitting unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.